प्रथम अध्याय

शोध परिचय

प्रथम अध्याय
शोध परिचय

प्रस्तावना :–

शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो मनुष्य की जन्मजात शक्तियों के स्वाभाविक और सामंजस्यपूर्ण विकास में योगदान देती है। व्यक्ति और वैयक्तिकता का पूर्ण विकास करती है। उसे वातावरण से सामंजस्य स्थापित करने में सहायता देती है। उसे जीवन और नागरिकता के कर्तव्यों और दायित्वों के लिये तैयार करती है, और उसके व्यवहार विचार और दृष्टिकोण में ऐसा परिवर्तन करती है जो समाज, देश और विश्व के लिये हितकार होता है।

शिक्षा केवल वही नही जो बालक को स्कूल में मिलती है, बल्कि शिक्षा का कार्यक्रम जीवनभर चलता रहता है। मनुष्य विभिन्न अनुभवों से अपने जीवनभर कुछ सीखता है। वह हर किसी परिस्थिती और हर किसी मुनष्य से कुछ न कुछ सीखता है।

शिक्षा का अर्थ पहले केवल ज्ञान को बालक के मस्तिष्क में भरने से लगाया जाता था। लेकिन अब ऐसा नहीं है, आज शिक्षा का अर्थ बालक की जन्मजात शक्तियों का सर्वागीण विकास करके उसके जीवन को सफल बनाने से है। शिक्षा स्थिर नही है, यह गतिशील प्रक्रिया है। शिक्षा और समाज का साथ-साथ चलना आवश्यक है, जब-जब समाज में परिवर्तन होता है, तब तब शिक्षा में परिवर्तन होना आवश्यक है। ऐसा नहीं हो सकता कि समाज आगे निकल जाये और शिक्षा पीछे रह जाए जैसे समाज में पहले आध्यात्मिक विकास करना शिक्षा का उद्देश्य हो गया। किन्तु समाज आध्यात्मिक मार्ग पर चला नही। शिक्षा समाज को अच्छा से अच्छा बनाना चाहती है। इसलिए वह अपने में भी परिवर्तन करती रहती है। और एक सी कभी नहीं रहती।

शिक्षा का उद्देश्य बालकों के व्यक्तित्व का सर्वागीण विकास है। अध्यापक को केवल विषयों के अध्यापन तक ही सीमित न रहकर बालकों के सर्वागीण

विकास में योगदान देने के लिये तत्पर रहना चाहिए। सर्वागीण विकास का अर्थ होता है ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक पक्षो का विकास करना। भावात्मक पक्ष सबसे महत्वपूर्ण समझा जाता है। इसका विकास करना कठिन होता है। तथा समय भी अधिक लगता है। उसके विकास के संवेदनशीलता भी चाहिए। सव्रप्रथम भावना का विकास करने का प्रयास किया जाता है। जब भावना में स्थिरता तथा गहनता हो जाती है तब भावनायें अभिवृत्ति का रूप लेती है। जब अभिवृत्तियाँ गहरा जाती है तब वह अभिवृत्तियाँ मूल्य कहलाती है। व्यक्ति के मूल्यों से उसके धर्म का बाध होता है। भावात्मक पक्ष का सर्वोच्च विकास मूल्यों के लिये किया जा सकता है। व्यक्ति के मूल्यों, उसका धर्म का बाध आचरण और व्यवहार से होता है। अपने जीवन में व्यक्ति जीन नियमों तथा आचरणों को धारण करता है उसे मूल्य की संज्ञा दी जाती है।

शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो समाज का निर्माण कर सके। मानवीय समाज का निर्माण करना शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। जिसमें एक साथ दूसरे पर भरोसा कर सके। कमजोरों को बलवान का डर न हो, गरीब अमीर की ठोकर से बचा रहे, जिसमें एक संस्कृती दूसरी संस्कृति के साथ-साथ भली भांति फल-फूल सके और हर एक की विशेषता प्रकाशित हो, जहाँ हरके महान बन सके जिसमें बनने की क्षमता हो, और वह महान बनकर अपनी सारी शक्ति को समाज सेवा में लगा दें।

आधुनिक समाज पद्भ्रष्ट होकर कुमार्ग पर जा रहा है। चोरी, हिंसा, हत्या व बलात्कार जैसे अपराध निरंतर बढ रहे हैं। चारो ओर बेईमानी, रिश्वतखोरी, स्वार्थ व लिप्सा सा वातावरण है। युवाओं के आदर्श राम, कृष्ण व गौतम न होकर माइकल जैकसन, टायसन व अंडर टेकर है। जीवन के किसी क्षेत्र में असफल होने पर या तो वे आत्महत्या कर लेता है, या फिर मादक द्रव्यों का सेवन करके कल्पना लोक में विचरण करने लगता है। यहाँ तक की विवाह जैसी पवित्र परंपराओं को नकार इन्होंने एड्स जैसी आफत को गले लगा लिया है। ऐसे समाज का बुद्धिजीवी वर्ग का चिंतित होना स्वाभाविक ही है। यही कारण है कि आज शिक्षा के माध्यम से संरक्षण की बात की जा रही है। बालक के लिये

बौद्धिक प्रकार का प्रेम पर्याप्त नहीं होता उसे मानसिक प्रेम की आवश्यकता होती है। हमें उसकी इच्छाओं को सर्वोपरी मानकर पूर्ण करना चाहिए। इस अवस्था में बालक इतना निर्दोष होता है कि उसे कभी अनुचित इच्छा होती ही नहीं, उसकी सभी इच्छाएँ आवश्यकताएँ होती है। जिन्हें हम अनुचित इच्छा कहते हैं वह तो हम उसमें आरोपित करते है। इस अवस्था में बालक को सही ढंग से संस्कार दिया जाए तो उसमें आत्मविश्वास एवं आत्मसम्मान का भाव पैदा होगा। उसकी शारीरिक, मानसिक, व बौद्धिक क्षमताएँ उन्नति करती है। उसमें उत्साहपूर्ण आनन्द जागृत होता है। जीवंतता बढ़ती है, कार्यशक्ति बढ़ती है, मन की एकाग्रता बढ़ती है।

आज भारत में नहीं वरन् पूरे विश्व में इस विषय पर दुःख और चिन्ता प्रकट की जा रही है कि लोगों के तथा विशेष रूप से नई पीढ़ी के जीवनमूल्यों का हास होता जा रहा है, बढ़ती हुई अनुशासनहीनता भ्रष्टाचार, अपराध तथा अनैतिकता जीवनमूल्यों के हास के साक्षी है। वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए यह अत्यधिक महत्वपूर्ण है कि हम अपनी शिक्षा प्रणाली को उचित रूप में मूलोन्मुख करे। इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि शिक्षा के सभी स्तरों पर विर्धार्थियों के मन में उचित मूल्यों को बैठाने की ओर ध्यान दिया जाए ताकि देश के भावि मार्ग प्रशस्त हो। आज के बालक कल के नागरिक है। अतः हमें जिस प्रकार का भारत बनाना है उसकी शुरूआत विधालयों से होगी। शिक्षा आयोग का यह कथन है कि भारत के भाग्य का निर्माण उसके विधालयों में हो रहा है। बिल्कुल सत्य है।

मूल्य एक सामाजिक सांस्कृतिक विरासत है। इसलिए इसकी प्राप्ति हमें सामाजिक अंतः क्रियाओं के दौरान सामाजिक सांस्कृतिक संस्थाओं व समितियों से होती है।

प्रत्येक समाज में चाहे वह आदिम हो, या सभ्य, सरल हो, या जटिल, मूल्यों का बहुत महत्व होता है। मूल्य समूह एवं समाज का आधार कहे जाते हैं। बिना मूल्यों सदगुणों एवं आदर्शो के निमार्ण व पुनिर्माण के समाज का अस्तित्व संभव नही है। जीवनमूल्य एक प्रकार के स्थायी विश्वास होते हैं।

इसलिए प्रारंभ में एक बार जिन मूल्यों का बीज बालक में बो दिया जाता है उसमें परिवर्तन करना असंभव नही है परन्तु कठिन जरूर हो जाता है। इस व्यस्त समाज में जब कि शिक्षा का समस्त दायित्व विधालयों पर आ गया है तो जीवनमूल्यों के विकास की और ध्यान देना भी विधालयों का महत्वपूर्ण कार्य हो गया है। विधालयों के पाठ्यक्रम में प्राथमिक स्तर से ही मानवीय मूल्यों के विकास हेतु प्रयास किये जाने चाहिए। इस दृष्टि से प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षकों पर बालकों का निमार्ण करने का महान उत्तरदायित्व है। उनका प्रमुखकार्य यह होना चाहिए कि विधालय का समस्त वातावरण इस प्रकार बनाए कि बच्चों में उचित मूल्यों का संचार हो।

मूल्यों का सम्बंध किसी व्यक्ति या समूह के व्यवहारों से होता है। वही मनुष्य के व्यवहार को नियंत्रित करते हैं और वही उसके जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। जीवन सम्बंधी ऐसा व्यवहार व आचरण जो बालक के व्यक्तित्व को अभिव्यक्त एवं विकसित कर सके तथा सामाजिक प्रतिमानों के अनुसार उचित मूल्यों की कसौटी परखते हुए मानव कल्याण व मानव एकता में सहभागी बन सके उसे जीवन मूल्य कहा जाता है। दूसरे शब्दों में कहा जाये तो जीवन का नियमन और संयम ही मूल्य है। यदि व्यक्ति के व्यवहार का नियंत्रण और मार्गदर्शन करते हैं। उनमें जीवन के प्रति सही दृष्टिकोण अपनाने की क्षमता का विकास करते हैं अतः इन्हें जीवन मूल्य मानवमूल्य अथवा जीवन की संस्कार चेतना कहे तो अतिशयोक्ति न होगी। इन प्रमुख जीवनमूल्यों को जानना एवं समझना आवश्यक है, जो मानव व्यवहार को नियंत्रित करने के लिये साथ-साथ व्यक्तित्वनिर्माण में सहायक बनते हैं। अनुशासन, समयपालन, स्वयं प्रेरित होकर कार्य करना सहयोग की भावना बडों का आदर करना, निःस्वार्थ भावना, परस्पर पूरकता की भावना, सत्यवाचन, इमानदारी, अहिंसा, एकता, शिष्टाचार, क्रोध न करना, सहिष्णुता, निर्भयता, परोपकार, उत्साह, प्रसन्नता, परिश्रम करना आदि जीवनमूल्यों या नैतिकता के विचार मानवी के जीवन में आचरित होने चाहिए तभी वो मानव कहलाने लायक बनेगा। भगवदगीता में भगवान ने कहा है मनुष्य वही है जो ''मम वत्मानुवर्तन्ते'' मेरे रास्ते पर चले यानि कि मेरे जैसा

जीवन जीये। हमारे भारत देश को, हमारी भारतीय संस्कृति को बचाने के लिए मानव को जागृत करना पडेगा। इसलिए हमारी भावि पीढ़ी को ऐसे नीतीमत्तो वाले संस्कार देना चाहिए।

स्वाध्याय क्या है?

स्वाध्याय विषय ही व्यापक और गहरा है। स्वाध्याय को समझना चाहिए। सही अर्थ में करना चाहिए, अन्य को करवाना चाहिए, और अन्त में ऐसा जीवन भी जीना चाहिए।

स्वाध्याय कार्य को कुछ लोग मानसिक दृढता और बौद्धिक स्थिरता के लिए औषध मानते है। स्वाध्याय जीवन का औषध है पर वो परिभाषा पूर्ण नहीं है। औषध को जब हम बिमार होते है तभी लेते है, हमेशा लेते नहीं। कुछ लोग स्वाध्याय को अन्न मानते है। अन्न हमेशा लेते हैं वैसे स्वाध्याय नियमित करना चाहिए। परन्तु स्वाध्याय के लिए अन्न की उपमा पर्याप्त नहीं हैं, क्योंकि अन्न दिन में दो बार लेते हैं और समय के अन्तर में लेते है। स्वाध्याय ऑक्सिजन (प्राणवायु) है। इसमें स्वाध्याय की समग्रता, व्यापकता स्पष्ट होती है। जन्म के साथ शुरू किया हुआ श्वासोच्छवास मृत्युपर्यन्त चलता रहता है उसके अभाव में मनुष्य का जीवन संभव नही है। स्वाध्याय प्रवृत्ति है। वृत्ति को प्रकृष्ट, उत्कृष्ट श्रेष्ठ बनाती है। और मनुष्य को श्रेष्ठ यानि भगवान का बनाती है। उसी का नाम प्रवृत्ति है। स्वाध्याय भगवान का काम करने की प्रवृत्ति है। स्वाध्याय धर्म और संस्कृति को समझने के लिये सही दृष्टिकोण है।

स्वाध्याय यानि समझदारी, स्वाध्याय यानि प्रकाश, स्वाध्याय यानि हवा, स्वाध्याय यानि विवेक, स्वाध्याय यानि ध्येय, आदर्श, निष्ठा, स्वाध्याय यानि प्रभुप्रेम, स्वाध्याय यानि 'स्व' का अभ्यास। 'स्व' यानि शरीर में जो चैतन्य तत्व है उसे चीपका हुआ अह्म है और इच्छा। उसमें अपने 'स्व' को पहचानना और दूसरे के 'स्व' के लिये सम्मान रखना उसका अभ्यास करना ही स्वाध्याय है।

स्वाध्याय द्वारा अपना अह्म है उसको कोमल करना और प्रभु के साथ तादात्म्य रखना। कोमल करना यानि कि [illegible]

रखके प्रभुनिष्ठ बनाना। वो कब बनेगा ? अहम के पीछे" में किसी का हूँ ! अर्थात् "में प्रभुका हूँ'' ऐसी वृत्ति निर्माण होगी तब अहम प्रभुनिष्ठ बनेगा।

'इच्छा' को सदइच्छा करने के लिये स्वाध्याय में इक्कटे होते है। व्यक्तिगत जीवन में इस सदइच्छा के कारण व्यक्ति दीन बनता नहीं है। लाचार नहीं बनता, स्वार्थी बनता नही है। पराधीन जीवन जीता नहीं है। वो आत्मगौरव से जीता है अस्मितायुक्त और भावपूर्ण जीवन जीने लगता है। इस सद्इच्छाओं से सामाजिक जीवन में भी किसी का बुरा नहीं करता, परन्तु अच्छा करने लगता है, और भगवान को केन्द्र में रखकर भगवान के लिये काम करने लगता है।

दीर्घकाल एवं निरंतर स्वाध्याय के अभ्यास से सदइच्छायें दृढ होती है, और व्यक्ति द्वारा प्रभु पर विश्वास बढ़ता है।

स्वाध्याय की बैठक क्या होता है ?

स्वाध्याय की बैठक में चार बातों पर ध्यान दिया जाता है। (1) सुनना (2) मिलना (3) सोचना (4) फेकना। जिसमें 'स्व' का सर्वागीण विकास है, उसका एकाग्र चित्त से यहाँ श्रवण होता है। गरीब श्रीमंत विद्वान-मूर्ख, श्रेष्ठ-कनिष्ठ, कुशल-अकुशल ऐसे विचारों से दूर रहकर प्रभु के पुत्र बनकर सभी साथ में मिलते हे। इसलिए एक-दूसरे के प्रति आत्मीयता और एकता निर्माण होती है। कोई लाभालाभ के बिना सभी मिलते रहते है। और सब का एक ध्येय जीवनविकास है। इसलिए सभी प्रभुप्रेम के नाते से जुउे हुए हैं। विभिन्न स्थिती के, विभिन्न वृत्ति के, विभिन्न परिस्थिति के, विभिन्न जाति के, विभिन्न संप्रदाय के लोग साथ मिलकर प्रभुकार्य करते है। यहाँ पर कार्यकर्ताओं में एकता और एक दूसरे पर निरपेक्ष प्रेम दिखाई देता है। जीवनविकास के बारे में जो भी कुछ सुना है उसके बारे में विचार करना पड़ता है। जीवन में सुख मिलता है तो प्रभु प्रसाद समझकर सतत प्रभुका स्मरण करना पड़ता है। प्रभुकार्य करने की इच्छा होती है। स्वाध्यायकार्य में बैठने के बाद व्यवहार, वृत्ति, स्थिति, अधिकार, स्थान की समझ भूल जाते हैं। सभी एक पिता के संतान है ऐसी समझ का विकास होता है।

स्वाध्याय से सतश्रवण होता है। सुना हुआ जीवन के पाठ को पक्का करने के लिये अन्य को अभ्यास के रूप में कहने का मन होता है। यानि कि सतकथन होता है। अपने जीवनविकास के लिए उसकी उपयोगिता दिखाई देती है तो सतचिंतन होने लगता है, और उसी दिशा में प्रयत्न होने लगते है, और सत् चारित्र्य निर्माण होने लगता है।

स्वाध्याय का ध्येय क्या है?

विश्व के मानवों के लिये हमारे ऋषि-मुनिओ ने एक हि मंत्र दिया कि ''तस्मात् स्वाध्याय प्रवचनाभ्याम् न प्रमदितव्यम्'' किस लिये? आत्मविकास जीवन का अन्तिम ध्येय है। प्रभु को प्रेम करना जीवन का श्रेष्ठ नाता है। सुनने के लिये इक्कटे हुए श्रोतागण जानते हैं कि '' श्रुतं हरति पापानि'' यहाँ पाप यानि लाचारी स्वाध्याय श्रवण से निकल जाती है । यहाँ का श्रोता साधुता के लिये प्रयत्नशील, अभ्यासु, निष्ठावान है। स्वाध्याय द्वारा आत्मविकास के ध्येय को प्राप्त करने के लिये कृतनिश्चयी बनता है। और "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना से मानव के साथ ''सभी का खून बनाने वाला एक है'' इस विचार को दैवी भातृभाव, दिव्यप्रेम सबन्ध का अनुभव करने का प्रयास करता है। जो सुना है उसको समझने का प्रयत्न करता है। समझा है उसको जीवन में आचरण करने का प्रयत्न करता है। वो जानता है कि ''ज्ञानं भारः क्रिया विना'' अर्थात् कृतिरहितज्ञान भाररूप है, और कृतिरहित प्रेम दंभ है। कोई भी कर्म करने की क्रिया में तीन बात आती है। पुण्य के लिये कर्म करने से फल मिलता है। निष्काम कर्म करने से विकास होता है। परन्तु प्रभुप्रेम के लिये कर्म करने से भक्ति होती है। स्वाध्याय में उपदेश, प्रचार, सुधार नही है, परन्तु भक्ति है, प्रेम का माध्यम है। और आत्मविकास अन्तिम ध्येय है।

स्वाध्याय की दृष्टि में क्या है ?

स्वाध्याय को सतत सुनने के बाद स्वाध्यायी गाँव-गाँव में गुमता है, तब समाज में विभिन्न प्रकृति के, विभिन्न स्तर के, लोगों के संपर्क में आता है। समाज में सामान्य रूप से तीन वर्ग है एक वर्ग सबसे ऊंचा उसकी तरफ

द्वेषरहित दृष्टि रखनी चाहिए। समान कक्षा के वर्ग की ओर मित्रता की भावना और सबसे निम्न वर्ग की ओर करूणा की दृष्टि रखनी चाहिए।

स्वाध्याय का काम क्या है ?

स्वाध्यायी प्रेम से, हृदय से गीताविचार लेकर जब गुमता है तब वो उपदेशक नही है, प्रचारक नही है, सुधारक नही परन्तु भक्त है। उसने प्रभुप्रेम को सुना है, समझा है। मानव मानव के बीच तुप्त हो रहे भाव ओर प्रेम को पुनःनिर्मित करने के लिये भावसर्जन के लिये, भावसंरक्षण के लिये, भावसंवर्धन के लिये और अन्त में प्रभुचरण में भावसमर्पण करने के लिये प्रेम का माध्यम लेकर गॉवों में गुमता है। इस प्रकार स्वाध्याय से समाज का विकास होता है। कथा, आख्यान, व्याख्यान, वक्तव्य से स्वाध्याय की एक विशिष्टता है। कथा और व्याख्यान में दृष्टांत कर्णप्रियता, वातावरण की सुन्दरता या रमणीयता मुख्य है। स्वाध्याय में गुणअनुवाद, श्रवण नही है। परन्तु गुणों का जीवन में आचरण करने का दृढ़ संकल्प है। दोषों से दूर रहने के लिये और जो दोष है उसको निकालने के लिये प्रयत्नशील रहते है। सुनने में आती पात्रसृष्टि के साथ-साथ हमें भी अपनी जीवनडायरी खोलने की इच्छा होती है। जीवन की तुलना करने का मन होता है, और दोष दूर करने के प्रयास होने लगते है।

स्वाध्याय में वक्ता और श्रोता के बीच एक्य निर्माण होता है। वक्ता श्रोता को अज्ञानी मानता नही है। वक्ता उपदेशक नही है। वक्ता साधक है। इसलिए वक्ता में गुरुग्रंथि निर्माण नहीं होती है। और श्रोता में लघुग्रंथि नहीं आती है। वक्ता बोलकर और श्रोता सुनकर स्वाध्याय करता है। तेजस्वी और भावपूर्ण विचारों को सुनकर जीवन के पाप अर्थात् लाचारी, दीनता, अकर्मण्यता, संशय आदि दूर होते हैं। ''श्रुत्वा पापं परित्यजेत्' और अन्त में ''श्रुत्वा ज्ञानामृतं लभेत्' ज्ञानरूपी अमृत प्राप्त कर के अमृतविधा से अस्मितायुक्त और भावपूर्ण जीवन की ओर गति करता है, ये सही स्वाध्याय है।

स्वाध्याय क्या करता है ?

व्यक्ति को कृतीशील बनाता है। स्वाध्यायी प्रभुकार्य करता है। प्रभुभक्ति की कृति उसका चरित्र निर्माण करती है। ऐसी सही समझ उसको है। वो चुपचाप बैठा नही रहता। भगवान हमारा सतत खयाल रखता है, जीवन पर्यन्त साथ देता है। तो उसके लिये भक्त चुप कैसे बैठेगा ? स्वाध्याय भक्ति के लिये और जीवनविकास के लिये प्रभुकार्य के साथ अपने को जोड़ता है। उसको किसी की अपेक्षा नही है।

मानव मानव के बीच रहे भेदभाव को दूर करता है। स्वाध्याय जाती, वर्ण, कोम, संप्रदाय या पंथ को महत्व देता नही है। सभी एक पिता के सन्तान है, और हमारा सम्बन्ध खून से ज्यादा खून बनाने वाले से है उसकी प्रतीति करता है। जगत में जन्म लेने वाला कोई भी व्यक्ति हीन नही है, शूद्र नहीं है, अस्पृस्य नहीं है । गीता का सन्देश ''ममैवांशो जीवलोके'' ''सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्ट'' का यहा ज्ञान होता है।

मानव में कार्य का उत्साह बढ़ाता है। एकान्त में चित्तएकाग्र करके भावभक्ति और समूह में कर्मयोग कर के कृतिभक्ति द्वारा अपना जीवनविकास होता है। इसलिए कोई भी व्यक्ति को हताश और निराश होने की जरूरत नही है।

सभी का सम्मान करना चाहिए और बिना अभिमान से सम्पूर्ण यश भगवान चरण में रखना चाहिए । इसलिए उन्मत होने का प्रश्न ही नहीं उठता। प्रभुकार्य, सांसारिक कार्य, धन प्राप्त करने में, अभ्यास में, अधिकार में और खेल में उत्साह से कार्य होता है। स्वाध्याय जीवन की हर कृति में प्राण फूकने की शिक्षा देता है। भगवान का जीवन ही उत्साह, स्फूर्ति और चैतन्य का समन्वय है।

स्वाध्याय व्यक्ति को सच्ची समझ देता है। वहेम पर खडी रही हुई, अंधश्रद्धा से भरी हुई, चमत्कारों में फसी हुई भक्ति को दूर करके प्रभुप्रेम की कृतिभक्ति करने लगता है। भक्ति केवल कृति नही है परन्तु सच्ची वृत्ति है।

एक्य की भावना दृढ़ होती है। हम सब एक परिवार के हैं। इसलिये हमारा एक दैवी परिवार है। ऐसी भावना निर्माण होती हे।

स्वाध्याय से क्या मिलता है ?

स्वाध्याय से दैवीगुण संपत्ति प्राप्त होती है।

कृतज्ञता :- हम से प्रेम किया है, और हमारा कार्य किया है उसका आदर करना ही कृतज्ञता है। भगवांन की ओर ऋषि-मुनियों की ओर संस्कृति की ओर गुरू की ओर अभिभावक की ओर कुटुम्ब-समाज और राष्ट्र की ओर कृतज्ञता व्यक्त करना, मनुष्य का कर्तव्य है।

अस्मिता :- ''मैं हूँ "उसका ज्ञान होता है। मैं कर सकुंगा, बन सकुंगा, निर्माण करूंगा, प्राप्त कर सकुंगा ये व्यक्ति का ज्ञान अस्मिता में होता है। मानवी में दुर्दम्य वृत्ति है, इसलिए भगवान उसमें बसा है। मैं बडा हूँ, लेकिन दूसरा व्यक्ति छोटा नही है, लाचार नही है। ऐसी वृत्ति का ज्ञान अस्मिता में होता है। आत्मगौरव, आत्मविश्वास और आत्मरक्षण का ज्ञान अस्मिता में होता है।

तेजस्विताः - व्यक्ति दीन बनता नही है, लाचारी करता नही है वो सच्चा तेजस्वी है। जिसका भगवान आदर्श है वो तेजस्वी है। तेजस्वी वही है जो परिस्थिती के सामने लाचार बनता नहीं है, विकारों के सामने वामन बनता नही है।

भावपूर्णता :- मनुष्य जीवन का 2/3 भाग भाव से भरा हुआ है। और 1/3 भाग भोग का है। अपने भाव-जीवन को समृद्ध करना और दूसरे के भावजीवन को पुष्ट करना वो भगवान का कार्य है।

समपर्णः- जीवन में दैवीगुण प्राप्त करने के बाद वो सुगंधी जीवनपुष्प भगवान के चरण में समर्पण करने में मानव जीवन की धन्यता है।

स्वाध्याय कार्य की प्रवृत्तियाँ :-

स्थानिक युवा केन्द्र :-

युवाकेन्द्र में युवाओं के प्रश्नों, चारित्र्यनिर्माण, जीवनविकास, धर्म, संस्कृति, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र और विज्ञान आदि क्षेत्रों के विविध विषयों पर

चर्चा होती है। शाला और कॉलेज के विद्यार्थियों और स्थानिक विस्तार के युवा भाई-बहन अति उत्साह से ऐसी चर्चा में भाग लेते हैं। युवाओं को पूर्व तैयारी करने की, वाचन की, वक्तव्य की आदत पडती है। सदविचार और सदमित्रों का साथ मिलता है । युवाओं व्यसन और खराब आदत से मुक्त बनते हैं।

अभ्यास वर्तुल

युवाओं छोटे-छोटे समूह में अनौपचारिक रीति से मिलते हैं, और जीवनस्पर्शी पुस्तकों का अध्ययन करने का प्रयत्न करते है। वाचन, चिन्तन और चर्चा द्वारा ये युवाओं विभिन्न विचारकों के विचार जानने का प्रयास करते है। ये अभ्यास परीक्षालक्ष्य नही, जीवनलक्ष्य है। इसलिए उसका अत्यन्त महत्व है।

युवा संपर्क :-

युवाओं को जो विचार मिलते हैं उसे लेकर कॉलेज, छात्रावास, गलीयों के युवाओं के पास जाते हैं। उसके साथ व्यक्तिगत सम्पर्क करके उसको मिलते रहते है।

उत्सव मनाना :-

जीवन में उत्साह और नवचेतना निर्माण करने के लिये उत्सव मनाते है। जड़ और पारंपारिक रीति से उत्सवों को मनाना युवाओं को पसंद नही है। युवाओं हर उत्सव का सच्चा मर्म समझने का प्रयास करता है।

जन्माष्टमी :-

श्री कृष्ण के जीवन की और विचारधारा की स्पष्ट समझ प्राप्त करने के लिये श्री कृष्ण जन्मोत्सव और श्री कृष्ण जीवनदर्शन पर चर्चा और सांस्कृतिक कार्यक्रमों द्वारा युवाओं भगवान श्री कृष्ण के संदेश को सही अर्थ में समझने का प्रयत्न करता है।

दीपावली मिलनः-

Regional Institute of Education LIBRARY Bhopal

दिवाली प्रकाश का पर्व है। उसी दिन सभी युवाओं एक दूसरे को मिलकर नये वर्ष की शुभेच्छा व्यक्त करते हैं। सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करके उत्सव मनाते हैं।

गीता जयंती :-

समस्त मानवजात को चिरंतर, प्रेरणा देनेवाली श्रीमद्‌भगवद्‌गीता ग्रंथ का पूजन किया जाता है। गीताजयंती के दिन अखिल भारतीय निबंध स्पर्धा और वकृत्व स्पर्धा का आयोजन किया जाता है। जिसमें देश के सभी युवाकेन्द्रो के युवाओं उत्साह से भाग लेते हैं। और गीता के लिये निष्ठा और समझ पैदा करने का प्रयत्न करते हैं।

खेल :-

युवाओं विभिन्न, प्रकार के खेल खेलते है। खेलके मैदान में आत्मीयता, संघनिष्ठा की भावना सहज निर्माण होती है।

पर्यटन :-

प्रकृति के पास जाकर समूह जीवन का आनंद उठाना यानि पर्यटन। अनुशासन युक्त युवाओं वर्ष में एक-दो बार पर्यटन में जाते है।

युवा मिलन और सम्मेलन

कॉलेजो,, छात्रावासों में और स्थानिक विस्तारो में नवयुवाओं का सम्पर्क करके उसको स्वाध्याय विचार और उसका ज्ञान हो सके, इसलिए युवा सम्मेलन रखते है। ऐसे सम्मेलनों में नियमित कृतिशील भाई-बहन आते है, और कार्य की व्यापकता तथा महानता समझने का प्रयास करते हैं।

कार्यकर्ता शिबिर :-

संचालक भाई भगवान के विचार एवं कार्य की स्पष्ट समझ और मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं, और नये वर्ष में आने वाले कार्यक्रमों की योजना बनाते हैं।

भक्तिफेरी :–

व्यक्ति ने जो विचार प्राप्त किये है, उसको जीवन में आचरण करने के लिए विश्व मे गुमकर लाखों युवाओं भक्तिफेरी करके अपना जीवन उत्तम बनाने का प्रयास करता है।

पाठ्यक्रम :–

पाठ्यक्रम में साहित्य का, वैदिक वाडमय का, भारतीय दर्शन शास्त्र का, पाश्चात्य विचार का और विविध धर्मो का तुलनात्मक अभ्यास के लिये विभिन्न विषयों को शामिल किया गया है। उसके लिए अभ्यास करने के लिए दो साल का पाठ्यक्रम है।

बालसंस्कारकेन्द्र :–

चार पाँच वर्ष की उम्र से सोलह सत्रह वर्ष की उम्र वाले बालकों को इस केन्द्र मे शामिल किया गया है। इसकी शुरूआत ई.स. 1950 में हुई थी। बालकों को शनिवार एवं रविवार के दिन बाल संस्कार केन्द्र में बुलाये जाते हैं बाल संस्कार केन्द्र की जिम्मेदारी संचालक के उपर है, जिसका कॉलेज में अभ्यास चालू है और जिसका पढ़ाई का कार्य पूरा हो गया है वो युवा भाई बहन कोई भी लाभ के बिना निष्ठा से कार्य का संचालन करते है। जो युवाओं भोग और अशिस्त से व्यस्त है और संस्कार तथा संस्कृति से वंचित है। उसको संचालक शिबिर में मार्गदर्शन दिया जाता है। और केन्द्र चलाने की तालीम दी जाती है। बाल संस्कार केन्द्र का संचालक कुछ सीखाने की भूमिका में, शिक्षक की भूमिका में नहीं रहता, वो तो अपना अभ्यास करने की भावना रखता है। बच्चों के बड़े भाई या बड़ी बहन बनकर रहता है। ये संचालक बच्चेां को देवभाषा संस्कृत के श्लोंको–स्त्रोतों मुखपाठ करवाते है। चरित्र का निर्माण करने वाली शोर्यप्रधान, भावप्रधान कहानी सुनाते है। बच्चों के साथ खेलते है। उसको सांस्कृतिक मनोरंजन कार्यक्रमों के लिये तैयार करते है, और घूमने के लिये ले जाते है। इस तरह बालक और संचालक के बीच आत्मीय संबंध बनता है।

बाल संस्कार केन्द्र में संचालकों को वेतन के बारे में भी विचार नहीं आता है। वो बच्चों को उत्साह देने के लिये इनाम लाने के लिये या अन्य खर्च के लिये अपने पैसे खर्च करने में एक विशेष आनन्द का अनुभव करते है।

श्रीमद्भगवद्गीता पाठशाला (मुम्बई) के परम पूज्य पाडुंरंग शास्त्री आठवले, सतत कार्यरत बनकर मानवजीवन को उन्नत, तेजस्वी, भावपूर्ण, कृतज्ञतायुक्त और अस्मितायुक्त बनाने के लिये देश-विदेश में संस्कृति के दिव्य विचारों, नये नये प्रयोग के माध्यम से दे रहे है। वेदों के जीवंत, तेजस्वी, विजिगीषु जीवनवाद और प्रभावी भक्ति से स्वाध्याययज्ञ नियमित करते है। वर्तमान समय में यूरोप, अमेरिका एवं आफ्रिका के देशों में भी अपना विचार फैलाये है और विश्व में स्थान प्राप्त किया है।

अध्ययन की आवश्यकता :-

देश की प्रगति उस देश की शिक्षा पर आधारित होती है। परिवर्तनशील युग में भौतिकता के बहते प्रवाह के कारण जनमानस की शोच में बदलाव के साथ-साथ व्यक्तित्व निर्माण के मानदण्ड भी बदल गये है। भौतिक संसाधनों द्वारा सूचना एवं तकनीकी का ज्ञान ही उनके जीवन का अपेक्षित उद्देश्य बन गया है। सामान्यतः उनकी दृष्टि में यह समय की मांग और आवश्यकता है। बालक के चारित्रिक विकास की ओर उनका ध्यान नहीं हो जो कि व्यक्तित्व निर्माण की प्रमुख आधारशिला है । जैसा कि महात्मा गांधी ने कहा था कि ज्ञान चरित्र कें बिना मूल्यहीन है। चारित्रिक विकास के बिना बालक गलत व सही में भेद नहीं कर पाते है। यही कारण है कि उनमे जीवनपर्यन्त सही निर्णय लेने की क्षमता का विकास नहीं हो पाता।

आज बालकों का बात बात में झूठ बोलना, अनावश्यक बात पर बहस करना, या तर्कहीन बातें करना, गलत चीजों का सेवन करना तथा जहां चाहे थूक देना, गंदगी फैलाना, आक्रमक व्यवहार, अफवायें फैलाना व चुगली करना आदि मानसिक गंदगी उनके बाह्य व्यवहार में देखने को मिलती है।

किसी भी बालक के व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया में जीवनमूल्यों का प्रमुख स्थान है। हमारे जीवमूल्य किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब है। इन्ही के द्वारा हमें व्यक्ति के व्यक्तित्व की चारित्रिक विशेषताओं और उसके चिन्तन का पता लगता है। यही चारित्रिक विशेषताएँ और चिन्तन उसकी मनोशारीरिक क्रियाओं की अभिव्यक्ति करते है, जिनमें विभिन्न रूपों प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष में व्यक्ति में अन्तर्निहित मूल्य प्रदर्शित होते है। बच्चों को आत्मजन से वात्सल्यरूपी सुखद स्पर्श का आभास होता है। यहीं से वह मानवीय प्रेम की प्रथम अनुभूति करता है। जब वो विभिन्न रूपों से वात्सल्य व स्नेह को प्राप्त करता है तो उसमें भी इसी गुण का प्रादुर्भाव होने लगता है और शनैः शनैः उसके जीवन में शाश्वत मूल्य के रूप में पल्लवित होने लगता है।

बच्चों में मूल्यों का विकास उनके व्यक्तित्व अनुभवों एवं व्यक्तिगत रूचियों के अनुसार होता है। किताबी ज्ञान के द्वारा व्यवहार में मूल्यों को उतारा जा सकता है दूसरे शब्दों में यदि कहे तेा मूल्यों को पढ़ाया नहीं जा सकता बल्कि यह जीवन में आत्मसात् करने, उन्हे अनुभव करने तथा बोध करने की क्रिया है। अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में बालक विभिन्न क्रियाओं तथा अर्जित संस्कारों के माध्यम से विभिन्न जीवनमूल्यों को आत्मसात् करता है। तथा इसके साथ ही जीवन में घटित हेाने वाली विषमताओं का बोध करता है जो उसमें आत्मसंयम के साथ-साथ सही जीवन जीने की प्रेरणा देती है।

आज आवश्यकता है एक स्वस्थ एवं संस्कारमय ऐसे वातावरण की जहाँ पर भावनात्मक सुरक्षा के साथ-साथ बालक के मन में उठनेवाली गहन शंकाओं का समाधान किया जा सके। इस दिशा में शिक्षक की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। उन्हे अपने बच्चों की आवश्यकताओं को समझने के साथ-साथ एक आदर्श शिक्षक बनकर उन्हे सही जीवन जीने की कला भी सिखानी होगी तभी उनका भविष्य उज्वल बनेगा।

इस अध्ययन की आवश्यकता को अनुसंधानकर्ता ने इसलिए चुना है कि स्वाध्याय कार्य से बच्चों में व्यक्तित्व विकास कितना हुआ है। समायोजन पर

क्या प्रभाव पड़ता है तथा शैक्षिक उपलब्धि पर क्या प्रभाव पड़ता है उसकी जाँच करने के लिए इस विषय को चुना गया है।

समस्या कथन :-

"स्वाध्यायकार्य (आध्यात्मिक प्रवृत्ति) का कक्षा सात के बच्चों के व्यक्तित्व कारकों, शैक्षिक उपलब्धि तथा समायोजन पर प्रभाव-एक अध्ययन।"

अध्ययन के उद्देश्य :-

- स्वाध्यायकार्य (आध्यात्मिक प्रवृत्ति) का कक्षा सात के बच्चों के व्यक्तित्व कारकों पर प्रभाव का अध्ययन करना।
- स्वाध्यायकार्य (आध्यात्मिक प्रवृत्ति) का कक्षा सात के बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन करना।
- स्वाध्यायकार्य (आध्यात्मिक प्रवृत्ति) का कक्षा सात के बच्चों के समायोजन पर प्रभाव का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ :-

- स्वाध्यायकार्य (आध्यात्मिक प्रवृत्ति) एवं बिन स्वाध्यायकार्य (बिन आध्यात्मिक प्रवृत्ति) वाले कक्षा सात के बच्चों के व्यक्तित्व कारकों के अध्ययन में सार्थक अन्तर नहीं है।
- स्वाध्यायकार्य (आध्यात्मिक प्रवृत्ति) एवं बिन स्वाध्यायकार्य (बिन आध्यात्मिक प्रवृत्ति) वाले कक्षा सात के बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं है।
- स्वाध्यायकार्य (आध्यात्मिक प्रवृत्ति) एवं बिन स्वाध्यायकार्य (बिन आध्यात्मिक प्रवृत्ति) वाले कक्षा सात के बच्चों के समायोजन में सार्थक

अध्ययन की सीमाएँ :-

- शोध में गुजरात राज्य के बड़ौदा जिले के सावली तहसील को लिया गया है।
- शोध में सावली तहसील की 239 प्रारंभिक विद्यालयों में से 10 विद्यालयों को शामिल किया गया है।
- शोध कार्य में स्वाध्यायकार्य (आध्यात्मिक प्रवृत्ति) का कक्षा 'सात' के बच्चों के व्यक्तित्व कारकों, शैक्षिक उपलब्धि तथा समायोजन पर प्रभाव को ही शामिल किया गया है।